

बन्धन

स्वामी,

न जाने किन संस्कारों की डोरी से बँधी हूँ, अन्यथा बंधन तो सब टूट ही चुके थे। मैंने तो समझा था कि वह तूफानी रात, जो असंख्य पेड़-पौधों को गिराकर मन की पूरी बगिया को उजाड़ गई, अंतिम रात थी। एक ही वर्ष में वैसी तूफानी रात आपके जीवन में भी आ जाएगी, नहीं जानती थी।

कल आपका पत्र मिला। न जाने कितना कुछ, जो हृदय की सतह पर बिखरा-बिखरा-सा पड़ा था, सब सिमट कर जैसे किसी पोली जमीन में समा गया है। लगता है, वसंत आगमन का संदेश लेकर मन की सूखी बगिया पर जैसे वर्षा होने लगी है और उसमें से कोई मीठी-भीनी खुशबू आने लगी है। जी चाहता है इतनी वर्षा हो, इतनी वर्षा हो कि यह शरीर रूपी बस्ती उसमें समा जाए। लेकिन पुराने संस्कारों में बँधा यह मन, जिसे आपके दोस्त गोप ने नए विचारों से भर दिया है किसी भी बहाव में डूब तो सकेगा नहीं।

जानते हैं, जब वह पहली बार मेरे पीहर आया था तो उसने क्या कहा था? कहा था, “रूप! तुम मरना चाहती हो या जीना?”

इतने अपनेपन का अधिकार उसे आपसे प्राप्त हुआ था या उसके मन की उपज थी? यह सब समझने का प्रयास ही कर रही थी कि हँसते हुए उसने कहा, “इस प्रकार ललाट पर रेखाएं बनाने से ही विचारवान स्त्री नहीं कहला सकोगी!”

“अरे, तो मैंने कब कहा कि मैं विचारवान हूँ? विचारवान होती तो पति के घर से इस प्रकार धिक्कारी जाकर...”

स्वामी, अधिक कुछ न कह सकी। निचला होंठ दाँतों में भींचकर आँसू पी जाने की बहुत कोशिश की। लेकिन आँसू...! वे भी तो आपकी तरह ही जिद्दी हैं न! आँखों की चौखट लाँघ कर गालों पर अपनी राह बनाते हुए निकल पड़े।

गोप का हृदय इतना सहानुभूतिपूर्ण है या हर पराई स्त्री की वेदना किसी भी पुरुष के मन के तार, सदा इसी प्रकार झनझना देती है, सो तो मैं नहीं जानती। उस समय गोप ने अपने रूमाल से मेरा चेहरा इतने जोर से पोंछा कि मैं पलके उठाकर उसकी तरफ देखते ही लज्जित सी हो गई। काश, इतनी सहानुभूति उस समय आपसे पाई होती!

गोप ने कहा “एक दफ्तर में क्लर्कों के एक-दो पद खाली हैं।”

मुझे हँसी आ गई। पर टूटी हुई चूड़ियों की आवाज जैसी। मैंने कहा, "नौकरी! किसलिए? किसके लिए? पति के यहाँ से धिक्कारी गई स्त्री को भला जीने का कोई अधिकार होता है? विशेषकर तब, जब मैं स्वयं ही अपने घर को आग लगा आई हूँ?"

"यह तो," उसने लंबी साँस लेकर कहा, "आप पति-पत्नी का निजी मामला है, मैं बीच में आना नहीं चाहता। मुझे आप सिर्फ नौकरी के लिए 'हाँ' कहें तो मैं आपको प्रार्थना-पत्र दे दूँ।"

दो ही क्षणों में गोप कितना पीछे लौट गया! 'तुम' से 'आप' तक पहुँचने में बस यहीं दो क्षण ही तो लगे उसे!

याद है? विवाह से पूर्व अपनी प्रेम कहानी की बातें? एक दिन आपने कहा था कि मैं आपको 'तुम' कहूँ। उस दिन हम पहाड़ की तलहटी में बने कब्रिस्तान के पास खड़े थे, और वहाँ पर दफन लोगों की प्रेम कहानियों के विषय में चर्चा कर रहे थे। मैंने कहा था, "आपने भी तो 6 महीनों की मुलाकातों के बाद मुझे 'तुम' कहना शुरू किया है। मुझे कम से कम 6 इतना समय तो दीजिए।" "मगर यह तो अपनत्व की तरफ बढ़ने का कदम था न! इसलिए इतना समय लगा।" हाँ, आगे बढ़ना, पीछे हटने से अधिक कठिन है। नहीं तो भला मेरे साथ जिस प्रेम की सीढ़ियाँ चढ़ने में इतने वर्ष लग गए, वहाँ से इतनी जल्दी आप नीचे कैसे उतर जाते?

उस रात, आप सरोज के पास जाने की इतनी जिद कर बैठे, कि मेरी व्याकुलता देखकर भी आपके मन में न सहानुभूति जागी और न करुणा! प्रेम की सब सीढ़ियाँ उतरने के लिये क्या कुछ क्षण ही पर्याप्त थे?

अरे! यह क्या लिख बैठी? मैं तो आपसे बिछुड़ने के बाद भी कहानी लिखने बैठी थी। न जाने यह पूर्व की दास्तान कैसे दोहरा दी। लेकिन आजकल यह पूर्व की दास्तान ही तो मेरी पूँजी है जिसे कंजूस की दौलत की तरह हर रात को तनहाई में उलट-पुलट कर देखने की आदत-सी पड़ गई है।

गोप की बात कर रही थी न? उसने नौकरी तो दिलवा दी, परंतु इतने लोगों के बीच जाने से बहुत डर रही थी। लेकिन जब पहला वेतन मिला तो ऐसा लगा, जैसे गंगा का जल तो बहुत ही ठंडा था लेकिन डुबकी लगाते ही हर पाप से मुक्ति मिल गई। आपसे पैसे माँगने का जो थोड़ा बहुत बंधन शेष था, उससे भी मुक्त हो गई।

अब मैं एक और बंधन तोड़ने का प्रयास करने लगी। पीहर में रहते हुए विरह का बोझ, न जाने मन को किन वादियों की तरफ धकेलता रहता था। सारी सारी रात बस यही विचार सताता रहता था कि मैं सरोज से कम सुंदर हूँ। इसीलिए तो मेरे स्वामी मेरी जीवित लाश को लाँघकर सरोज तक पहुँच गए! मैं अपनी केश-सज्जा और हार-शृंगार ठीक सरोज जैसा ही करने लगी। फिर भी वह कभी दूर न हो सकी। भीतर ही भीतर

कुछ टूट गया था, जो लाख प्रयत्न करने पर भी जुड़ नहीं पा रहा था। एकांत में अतीत रूपी नाग बार-बार आकर फुफकारता रहता था...

उस समय जब मैंने महसूस किया कि आपका मन हर समय सरोज के पास ही भटकता रहता है तो सोचा, “जो पंछी उड़ चुका है उसे पकड़ने का प्रयास भी क्यों करूँ?”

और उस रात! जब आप जिद कर सरोज के जन्मदिन की पार्टी में शामिल होने के लिये निकल पड़े, वही मेरे जीवन की भयानक रात थी। मानती हूँ, मैंने अपने मुँह से कुछ कहकर आपको नहीं रोका। लेकिन क्या किसी की व्याकुलता और उसकी आँखों में आई आँसुओं की बाढ़, कुछ नहीं कहते?

आपके चले जाने के बाद हवा का एक एक झोंका कान के पास आकर पूछता “बस! विवाह का बंधन इतना ही ढीला होता है? इतना ही?”

मन पूछता, “तो फिर ये सात फेरे किसलिए दिलाए जाते हैं? रजिस्ट्रों में हस्ताक्षर क्यों करवाए जाते हैं? और लोगों की भीड़ इकट्ठी करके ऐसी कच्ची गाँठ क्यों बाँधी जाती है? क्यों?”

मेरे मन में एक आग सी भड़क उठी। उस आग से मैंने लाख मिन्नतों की कि बाहर आकर जला दे, सब कुछ। पर ऐसा हुआ नहीं। आँखों से अथाह जल बरसने के उपरांत भी मन की वह आग ठंडी न हो सकी। सारी रात मैं छटपटाती रही-

दूसरे दिन मैं भूखी शेरनी की तरह आपसे लड़ी। काश! उस समय आप इतना समझ पाते कि अपनों से खुद को अलग समझने की जलन क्या होती है? तब शायद अपने हृदय का सारा स्नेह आँखों से बहा कर मेरे मन की अग्नि को शीतल कर देते!

लेकिन उस समय तो सरोज के सिवाय आपको कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। आपने चिल्लाते हुए कहा “मुझे मेरे मित्रों से मिलने से रोकने वाली तुम कौन होती हो? हट जाओ मेरे सामने से, मैं तुम्हारी सूरत भी देखना नहीं चाहता।”

हाँ जी, आपने उस रूप (मुझे) को ऐसे कठोर शब्द कहे, जिसके विरह में कभी आपको रातें भी तलवार की चोट सी घायल करती थीं।

उस समय, मैं भला अपने हृदय के अँधेरों से क्या प्रकाश पा सकती थी! धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर कर नीचे चली आई। पैर कहाँ ले जा रहे हैं, यह भी ज्ञान नहीं रहा। जिस समय तंद्रा भंग हुई तो खुद को समुद्र के किनारे पाया। लहरें मुझे अपनी बांहों में लेने के लिये एक-दूसरे से होड़ लगा रही थीं। जब इंसान, इंसान को सहारा देने से इंकार कर देता है तो प्रकृति उसे सहारा देने के लिए अपने बाहें फैला देती है। मगर मुझ में इतनी समझ ही कहाँ थी?

मुझे नौकरी दिलाने के उपरांत भी गोप ने महसूस किया कि उसने मुझे कभी

ठीक तरह से हँसता हुआ नहीं देखा। एक दिन उसने दुखी होकर कहा, "तुम्हारे और मेरे दफ्तर के बीच कोई मीलों की दूरी तो है नहीं, फिर क्यों नहीं मेरे यहाँ चली आया करती हो?"

न जाने क्या सोचकर मैंने उसका यह सुझाव मान लिया। शायद आपको देखने की अभिलाषा ही कारण हो! पहली बार जब मैंने आपके दफ्तर में प्रवेश किया तो हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा था। अच्छा हुआ जो आपकी टेबल, गोप की टेबल से बहुत दूर थी। मैं प्रतिदिन नई-नई वेशभूषा में सजकर आपके विभाग में गोप से मिलने आती और उसको साथ लेकर बाहर निकल जाती थी। पहले तो मैं अपने पीछे आपकी दो आँखों को घूरता हुआ महसूस करती थी, फिर धीरे-धीरे मैंने उनमें ईर्ष्या और जलन की झलक देखी। एक दिन अचानक वह दृष्टि एक घायल व पंख कटे पंछी जैसी दिखाई दी।

उसी दिन चाय पीते हुए गोप ने पूछा, "आज तुम इतनी उदास क्यों हो?...लेकिन तुम्हारे मुख पर यह उदासी भी बहुत सुंदर लग रही है। जैसे पानी के बुलबुले में सूर्य का इंद्रधनुषी प्रकाश! जिसमें भाँति-भाँति के रंग झलकते रहते हैं।"

मैंने कहा, "मैं तुम्हारी बहुत आभारी हूँ गोप! मुझे भ्रम हो गया था कि मैं सुंदर नहीं हूँ, आकर्षक नहीं हूँ। तुमने मेरा भ्रम दूर कर दिया। तुमने मेरी सुंदरता को सराहा था। टाइप राइटर पर दौड़ती उँगलियाँ तुम्हें इतनी भाई कि शायद तुम उन्हें चूम लेते। तुम मेरे लिए पूजा की मूर्ति हो गोप! मेरी आत्मा को दुख की अँधेरी घाटियों से निकाल कर पहाड़ी के ऊँचें शिखर पर मशाल बनाकर रखने का महान कार्य तुम्हीं ने किया..."

उसने प्रसन्न होते हुए कहा, "जानती हो? तुम्हारे पति से विवाह की स्वीकृति भी ले चुका हूँ..."

"विवाह के बंधन को वे चाहे इतना ढीला समझें, लेकिन मैं नहीं समझती। गोप! तुम से मेरा आत्मिक प्रेम है, क्या यह पर्याप्त नहीं?" मैंने कहा था। यद्यपि इन शब्दों का खोखलापन मैं समझती थी, फिर भी कह बैठी। सरोज के लिए भी एक बार आपने यही कहा था, "क्यों विवाह के बाद क्या किसी लड़की से आत्मिक प्रेम नहीं हो सकता?"

गोप ने कहा, "ऐसी स्थिति में आत्मिक-प्रेम कोई अर्थ नहीं रखता। आत्मा और शरीर को एक दूसरे से अलग करना भूल है, धोखा है जो लोगों को भ्रम में डालने के लिए तो पर्याप्त हो सकता है, किंतु मुझे ऐसे धोखे से नफरत है।"

"मैं सोचूँगी," कहकर उस दिन जब मैं आपके दफ्तर में वापस आई तो मैंने देखा, आप ठीक किसी घायल पंछी की तरह मेरी तरफ देख रहे थे। उस समय मैं भला कर भी क्या सकती थी? आँखों में जल और मन में पीड़ा लिए मैं लौट ही रही थी कि आपके सेक्शन के पास से निकलते हुए सुना, "किशोर का तो भाग्य ही खराब समझो!"

आपका नाम सुनकर मैं चौंक गई। रूमाल गिराकर उसे उठाने के बहाने झुकी तो सुना, कोई चूड़ियों की झंकार सी मीठी हँसी हँसते हुए कह रही थी, "सरोज की दोस्ती को कई लोगों ने गलत समझा। उसके विवाह के निमंत्रण पत्र ने न जाने कितनों के सपने मिट्टी में मिला दिए होंगे?"

जैसे मुझे किसी ने जेल से आजाद कर दिया! चाहा कि दौड़ कर आपके पास आऊँ। किंतु नारी सदा खुले प्रेम प्रदर्शन से डरती है न! और डरे भी क्यों नहीं? पुरुष को भी तो उसका खुला प्रेम प्रदर्शन अच्छा नहीं लगता।

मैं अपने कार्यालय लौट आई। सोचती रही कि पुरुष को केवल 'साथ' से संतोष नहीं मिलता। लेकिन केवल विवाह से ही वह संतुष्ट होता हो, यह भी तो सत्य नहीं। मन में सोचा, "यदि फिर कभी हमने मिलकर घर बसाया तो मैं आपको अपनी सभी सहेलियों से खूब मिलने-जुलने दूँगी..."

और शाम को ही आपका यह पत्र मिला! बस, तब से न जाने कौनसे टूट हुए तार जुड़ गए हैं! क्या हुआ है? कुछ समझ में नहीं आता। झूने-पुराने, गाए-अनगाए गीत हृदय में गूँजने लगे हैं! आपने भी मेरी तरह एक तूफानी रात देखी और गुजारी है। मन की बस्ती को पृथ्वी में समाते हुए देखा है, इसका मुझे खेद है। परंतु 'रूप, फिर कभी हम जुदा नहीं होंगे' पत्र के इन शब्दों से मेरा अंग-अंग जैसे झूम उठा है। 'जिसे बंधन समझा वह प्रेम था, मुक्ति थी!' आपके इन शब्दों ने किस पीड़ा से मुक्त कर दिया है, क्या बताऊँ?

नींद जो नहीं आ रही थी सो बैठकर अतीत को पन्नों पर उतारा है...। हाँ, हम कभी जुदा नहीं होंगे। न जाने किस तूफानी रात में विवाह के बंधन इतने ढीले हो गए? पत्र मिलने के बाद भी क्या कम तूफान आए हैं? विरह की रातों में जो बेचैनी थी, उससे भी कई गुना अधिक व्याकुलता मन में लिए बैठी हूँ।

जानती हूँ, आपकी भी आज की रात खिड़कियाँ खोलते-बंद करते, बालकनी में खड़े रहकर, पुस्तकें पढ़ते हुए तथा अलमारियों में कुछ ढूँढते हुए, न जाने क्या-क्या करते हुए बीतेगी।

किंतु सुबह की पहली किरण के साथ यह पत्र दूधवाले के हाथ आपको मिल जाएगा। 9 बजे का समय होगा जब आप आएँगे। वह घड़ी! वह घड़ी! बस सोच नहीं सकती। प्रातः कालीन पिघले सोने से भी अत्यंत सुंदर होगी! सत्य होगी!

अनुवाद : राधा किशन चाँदवाणी

